RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

ओ३म्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्
साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्षः 76, अंक : 3 एक प्रति 2 : रुपये
रविवार 21 अप्रैल, 2019
विक्रमी सम्वत् 2076, सृष्टि सम्वत् 1960853120
दयानन्दाब्द : 195 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष-76, अंक : 3, 18-21 अप्रैल 2019 तदनुसार 8 वैशाख, सम्वत् 2076 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

स्वप्न और उससे बचाव

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

यत्स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते।
सर्वं तदस्तु मे शिवं नहि तद् दृश्यते दिवा।।
-अथर्व० ७।१०१।१

पर्यावर्ते दुःष्वप्न्यात्पापात्स्वप्न्यादभूत्याः।
ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः।।
-अथर्व० ७।१००।१

शब्दार्थ-यत् = जो अन्नम्: = अन्न स्वप्ने = स्वप्न में अश्नामि = खाता हूँ, वह प्रातः = प्रातः काल [जागने पर] न = नहीं अधिगम्यते = प्राप्त होता, तद् = वह दिवा = दिन में जाग्रत् दशा में नहि = नहीं दृश्यते = दीखता, अतः तत् = वह सर्वम् = सब मे = मेरे लिए शिवम् = सुखदायी अस्तु = होवे।। दुः+स्वप्नयात् = दुःस्वप्न से होने वाले पापात् = पाप से तथा स्वप्न्यात् = स्वप्न से होने वाली अभिभूत्याः = अभिभूति, दबाव, तिरस्कार से मैं पर्य्यावर्त्ते = लौटता और लौटाता हूँ, अहम् = मैं ब्रह्म = ब्रह्म को अन्तरम् = बीच में कृण्वे = करता हूँ, इससे मैं स्वप्नमुखाः = स्वप्नादि शुचः = शोक को परा = दूर करता हूँ।

व्याख्या-तीन अवस्थाएँ जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति प्रत्येक मनुष्य पर आती हैं। जब सभी इन्द्रियाँ-आँख, नाक आदि अपना-अपना कार्य कर रही हैं, उस अवस्था को जाग्रत् कहते हैं। साधारणतया जीव उस समय बहिर्मुख होता है, तभी बाहर के विषयों का ज्ञान होता है। जिस अवस्था में बाह्य इन्द्रियों ने कार्य करना छोड़ दिया है, किन्तु अन्तरिन्द्रिय-मन-ने कार्य नहीं छोड़ा, उस अवस्था को स्वप्न कहते हैं, इस अवस्था में बहुत बेजोड़ विचार सामने आते हैं। जिस अवस्था में मन भी विश्राम लेने लगता है, कोई इन्द्रिय कार्य नहीं कर रही होती, उस अवस्था को सुषुप्ति या गहरी नींद कहते हैं। उस समय आत्मा का बाह्य विषयों से सम्बन्ध न होकर अज्ञात रूप से परमात्मा से सम्बन्ध होता है। यहाँ स्वप्न और दुःस्वप्न का, तथा उनसे होने वाले अनिष्ट और उनसे बचने के उपाय का वर्णन है। 'यत्स्वप्ने अन्नमश्नामि' में स्वप्न का बहुत सुन्दर लक्षण-सा कर दिया है। स्वप्न में प्राप्त पदार्थ जाग्रत् में कभी उपलब्ध नहीं होता। कभी-कभी अनिष्ट स्वप्न दिखाई देते हैं, डरावने और भयानक सपने आने से मनुष्य के मन पर कुप्रभाव भी पड़ता है, अतः प्रार्थना की-'सर्वं तदस्तु मे शिवम्' वह सब मेरे लिए भला हो। मैं ऐसा कोई स्वप्न न देखूँ जिससे मेरा किसी प्रकार अनिष्ट या अमङ्गल हो।

बुरे स्वप्न आने से बहुधा शरीर की हानि भी हुआ करती है। लोग उसकी दवाइयाँ खाकर चिकित्सा करते हैं, किन्तु उससे लाभ नहीं होता। वेद उसकी चिकित्सा बतलाता है-'ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे परा स्वप्नमुखाः शुचः' = मैं ब्रह्म को बीच में करता हूँ और इस प्रकार स्वप्न आदि शोक को दूर करता हूँ, अर्थात् ब्रह्म-चिन्तन से दुःस्वप्न नष्ट होते हैं। अनुभवियों के अग्रगण्य दयानन्द जी इस विषय में उपदेश करते हैं-"जितेन्द्रिय बनने के अभिलाषी को रात-दिन प्रणव का जाप करना चाहिए। रात को यदि जाप करते हुए आलस्य आदि बहुत बढ़ जाए तो दो घण्टाभर निद्रा लेकर उठ बैठे और पवित्र प्रणव [ओ३म्] का जाप करना आरम्भ कर दे। बहुत सोने से स्वप्न अधिक आने लगते हैं, ये जितेन्द्रियजन के लिए अनिष्ट हैं।" मन को ब्रह्म में लगा दो, विषयों से हट जाएगा, फिर विषयों के स्वप्न भी न दिखाएगा। (स्वाध्याय संदोह से साभार)

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम्।।
-यजु० १२.७९

भावार्थ-दयामय परमात्मा अपने प्यारे पुत्रों को उपदेश देते हैं-हे पुत्रो! आप लोग विचार कर देखो, अति चंचल नश्वर, संसार में आप लोगों की मैंने स्थिति की है, उसमें भी पत्ते के तुल्य शीघ्र गिर जाने वाले शरीर में रहते हुए भी लोग संसार और शरीर को नित्य अविनाशी जानकर मुझ जगत्पति प्रभु को भुला देते हैं। संसार में ऐसे फँसे कि, न आपकी वेदवाणी जो मेरी प्यारी वाणी है उसमें रुचि रही और न आपके वेदवेत्ता महात्माओं के सत्संग में ही श्रद्धा रही। इसलिए अब भी आपको मेरा उपदेश है, आप लोग सत्संग करें। वेदवाणी सुनने-पढ़ने से ही प्रेम से मेरी भक्ति करते, लोक परलोक में कल्याण के भागी बनें।

देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु।।
-यजु० ९.१

भावार्थ-हे सदा प्रकाशस्वरूप, सब जगत् के स्रष्टा जगदीश! आप कृपा करके यज्ञादि उत्तम कर्मों को सारे संसार में फैला दो। यज्ञ आदि कर्मों के करने वालों के ऐश्वर्य को बढ़ाओ, जिसको देखकर यज्ञ आदि कर्मों के करने की रुचि सबके मन में उत्पन्न हो। आप आश्चर्यस्वरूप अपने प्रेमी जनों की बुद्धियों को शुद्ध करने वाले हैं, कृपया हमारी बुद्धि को भी शुद्ध करें। आप वेदों के और वाणी के पालक हैं, हमारी वाणी को सत्य भाषण करने वाली और मधुर बोलने वाली बनावें।

अग्ने त्वं नो अन्तम अत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमःरयिं दाः।।
-यजु० ३.२५

भावार्थ-हे परमात्मन्! आप सर्वत्र व्यापक होने से सबके अति निकट हुए, सबके गुण-कर्म-स्वभाव को जान रहे हो। किसी की कोई बात भी आपसे छिपी नहीं। इसलिए हम पर दया करो कि हम आपको सर्वान्तर्यामी जानकर सब दुर्गुण दुर्व्यसन और सब प्रकार के पापों से रहित हुए आपके सच्चे प्रेमी भक्त बनें। भगवन्! आप ही भजनीय, सेवनीय, सबके नेता सब में वास करने वाले, सारी विभूति के स्वामी, अपने प्यारे पुत्रों को उत्तम से उत्तम धन के दाता और उनके कल्याण के कर्ता हो। भगवन्! हमें भी उत्तम से उत्तम धन प्रदान करें और हमें अच्छे प्रकार से प्राप्त होकर, लोक परलोक में हमारा कल्याण करें। हम आपकी ही शरण में आये हैं।

वर्तमान काल में वैदिक ज्ञान की प्रासङ्गिकता

ले.-शिवनारायण उपाध्याय, कोटा

विश्व के सभी विद्वान् सर्वानुमति से यह स्वीकार करते हैं कि विश्व के पुस्तकालय में वेदों से अधिक प्राचीन कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है। हम इस लेख द्वारा यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि वेद केवल मात्र प्राचीनतम ग्रन्थ ही नहीं वरन् वे शाश्वत ज्ञान के संवाहक भी है। वेदों में स्थाई शांति की स्थापना के लिए कुछ उपाय सुझाए गये हैं। वेद कहता है कि यदि संसार में शांति स्थापित करनी है तो सबसे पहले सभी को मननशील मनुष्य बनने का प्रयत्न करना चाहिए और अपनी संतानों में देवत्व के गुणों का बीजारोपण करना चाहिए-

'तन्तु तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्षधिया कृतान्।

अनुल्बणं वयत जोगुवामपोमनुर्भव जनया दैव्यं जनम्।। ऋ. 10.53.6

दूसरी बात यह है कि संसार में मनुष्यों को चाहे वे किसी भी देश के निवासी हो किसी भी धर्म के अनुयायी हो किसी भी रंग के हो समान माना जाना चाहिये।

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

युवा पिता स्वपा रूद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरूद्भ्यः।।

ऋ. 5.60.5

मनुष्यों को कोई (अज्येष्ठासः) बड़ा नहीं है। (अकनिष्ठास) न कोई छोटा है। (एते भ्रातरः) ये सब भाई-भाई हैं। (सौभगाय, संवावृधु) भविष्य उन्नत करने के लिए मिलकर आगे बढ़े। (युवा पिता) सबका पिता (स्वपा रूद्र) उत्तम कर्मशील ईश्वर है। (एषां) इनके लिए (सुदुघा) उत्तम दूध देने वाली माता (पृश्निः) भूमि है। जो (मरूद्भ्यः) न रोने वाले के लिए (सुदिना) अच्छे दिन देती है।

वेदों में प्राणी मात्र को मित्रता की दृष्टि से देखने का निर्देश है-

दृते दृंऽह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।

मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।

मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे। यजु. 36.2

मुझे संसार के सम्पूर्ण प्राणी मित्र की दृष्टि से देखे और मैं भी संसार के सभी प्राणियों को मित्रता की दृष्टि से देखूं। इस प्रकार परस्पर मित्रता की दृष्टि से देखते हुए हम इस संसार में सुख और शांति स्थापित कर विकास की गति को तीव्र कर दे। वेदों में मनुष्य को ज्ञान और कर्म का सामंजस्य कर कार्य करने को कहा गया है-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यामृतमश्नुते। यजु. 40.14

(यः) जो विद्वान (विद्याम्) विद्या को (च) और उस के सम्बन्ध साधन उपसाधन को (अविद्याम्) अविद्या (कर्म) को (च) और उसके उपयोगी साधन समूह को और (तत्) उस ध्यान गम्य मर्म (उभयम्) इन दोनों को (सह) साथ ही (वेद) जानता है वह (अविद्यया) पुरूषार्थ से, कर्म से (मृत्युम्) मरण दुःख के भय को (तीर्त्वा) लांघकर (विद्यया) विद्या के द्वारा (अमृतम्) नाश रहित अपने स्वरूप अथवा परमात्मा को (अश्नुने) प्राप्त हो जाता है।

वेदों के द्वारा पुरुषार्थ द्वारा अपना विकास करने की प्रेरणा दी गई है-

उत्क्रामातः पुरूष मावपत्था मृत्योः षड्वी शमव मुञ्चमानः।

अथर्व. 8.1.4.

अर्थात्-हे मनुष्य तू पुरूषार्थ के द्वारा वर्तमान स्थिति से ऊपर उठ, नीचे मत गिर, मृत्यु के बंधन को चीरता हुआ बढ़ा चल। इसी प्रकार अथर्व. 8.1.6 में कहा गया है-**उद्यानं ते पुरूष नावयानं जीवातुं ते दक्षतातिं कृणोमि।** हे पुरूष तेरी उन्नति हो, गिरावट न हो तेरे लिए दक्षता का बल देता हूँ।

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः। अथर्व. 7.50.8.

मेरे दाहिने हाथ में कार्य करने का पुरूषार्थ है और बायें हाथ में विजय स्थित है। इसी प्रकार अथर्ववेद 4.13.6 में कहा गया है- **'अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तर'** अर्थात् मेरा यह बायां हाथ बड़ा भाग्यवान है और यह मेरा दायां हाथ अतिशय भाग्यवान है।

वेदों में ईश्वर को सम्पूर्ण सृष्टि का सृष्टा, रक्षक, न्यायकर्ता एवं प्रलयकर्ता माना गया है! संसार का सम्पूर्ण प्राणी उसके लिए अपनी संतान के समान है।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।

अधा ते सुम्नमीमहे। ऋ. 8.98.11

हे (वसो) हे सबको बसाने वाले (शतक्रतो) हे सैंकड़ों कर्मों वाले ईश (त्वम्) तू (हि) ही (नः) हमारा (पिता) पिता और (त्वम्) तू ही (माता) हमारी माता (बभूविथ) हुआ है। (अधा) इसलिये (ते) तेरे (सुम्नम्) आनन्द को (ई महे) हम मांगते हैं।

'पूर्णात् पूर्णमुदिचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते। अथर्व. 10.8.29

(पूर्णात्) पूर्ण ब्रह्म से (पूर्णम्) सम्पूर्ण जगत् (उद् सचति) उदय होता है! (पूर्णेन) पूर्ण ब्रह्म से (पूर्णम्) सम्पूर्ण जगत् (सिच्यते) सींचा जाता है।

वेदों में शिक्षा को सभी मनुष्यों के लिए आवश्यक कर्म बताया गया तथा वेदाध्ययन करने के लिए भी सभी को **'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानी जनेभ्यः।'**

ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च। यजु. 26.2

यह मेरी वाणी सबका कल्याण करने वाली है। जैसे मानव मात्र के लिए मैं इसका उपदेश करता हूँ वैसे तुम लोग भी ब्राह्मणों (बुद्धि जीवी) क्षत्रियों (योद्धाओं), शूद्रों वैश्यों (व्यापारियों), घरेलू सेवकों, स्त्रियों, घुमक्कड़ जाति आदि सभी लोगों के लिए इसका उपदेश करो। इसके विपरीत बाईबिल और कुरान में ईश्वर को केवल अपना ही ईश्वर माना गया है। निर्गमन पुस्तक में यहोवा ने मूसा से कहा, 'मैं तेरे पिता का परमेश्वर, इसहाक का परमेश्वर और याकूब का परमेश्वर हूँ। इसी प्रकार कुरान शरीफ 2 सूर बकर 87 आयत 130 में कहा गया है, 'और इब्राहीम के दीन से कौन मुंह फेर सकता है। उसके अलावा जो-जो निहायत नादान है। हमने उसे दुनिया में भी चुना था और आखिरत में भी वह नेकों में होंगे। ऋ. मं. 8 सूक्त 64 ऋचा 3 में कहा गया है-

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम्।

त्वम् राजा जनानाम्।

(इन्द्र) हे परमात्मन्। (त्वम्) तू (सुतानाम्) शुभकर्मों में निरत जनों का (ईशिषे) स्वामी है और (असुतानाम्) कुकर्मियों और अकर्मियों का भी (त्वम्) तू स्वामी है। न केवल इनका ही किन्तु (जनानाम् त्वम् राजा) सर्वजनों का तू ही राजा है।

अयं ते मानुषे जने सोमः पुरूषु सुयते। तस्ये हि प्र द्रवा पिब।।

ऋ.8.64.10.

हे इन्द्र। (ते) तेरे लिये (मनुषे जने) मुझ मनुष्य के निकट और (पुरूष) सम्पूर्ण मनुष्य जातियों में (अयम् सोमः सुयते) यह तेरा गुण कीर्तन किया जाता है। (तस्य एहि) उसके निकट आ (प्र द्रव) उसके ऊपर कृपा कर और (पिब) कृपा दृष्टि से उसको देख।

इस मंत्र में सभी धर्मों में एकता दिखाई गई है। ऋ.8.68.8 में कहा गया है कि परमात्मा सन्त, असन्त, चोर, डाकू, मूर्ख, विद्वान् सब ही भजते है परन्तु वे सब अपने-अपने कर्म के अनुसार फल पाते हैं।

वेदों में जिस धर्म का वर्णन हुआ है वह भी मनुष्य ही नहीं वरन् प्राणी मात्र के लिए सुख और समृद्धि का देने वाला है वैदिक धर्म के अतिरिक्त दूसरे किसी भी धर्म में तो धर्म की परिभाषा भी नहीं दी गई है केवल स्वर्ग का लालच तथा नरक का डर दिखाकर धर्म का प्रचार किया जाता रहा है। धर्म की परिभाषा करते हुए मीमांसा दर्शन कहता है-

चौदना, लक्षणोऽर्थो धर्मः। अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष हमें जिस कार्य को करने के लिए प्रेरित करे वह धर्म कहलाता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार-**'यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्म। वैशेषिक दर्शन 1.1.2** अर्थात् वह कार्य जिनके करने से मनुष्य शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास के शीर्ष पर पहुंच जावे तथा अन्तः में मोक्ष को भी प्राप्त कर ले धर्म कहलाते हैं। मनु स्मृति में कहा गया है कि **'सत्यं ब्रूयात प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयात एष धर्म सनातन।'** सदैव से चला आने वाला धर्म है-सदैव सत्य बोलना, प्रिय बोलना, अप्रिय सत्य न बोलना तथा प्रिय लगने वाला असत्य भी न बोलना। मनु स्मृति 6.92 में धर्म के दस लक्षण बताये गये हैं।

धृति क्षमा दम अस्तेय शौचम् इन्द्रिय निग्रह।

धीर्विद्या सत्यम् अक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

(धृति) धैर्य (क्षमा) अपने प्रति किये गये अपमान करने वाले को भी दण्ड देने की इच्छा न करना (दम) भावनाओं को दबा कर रखना (अस्तेय) चोरी, त्याग (शौचम्) शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक पवित्रता बनाये रखना (इन्द्रिय निग्रह) इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना उनको पाप कर्म में घूमने को स्वतंत्र न छोड़ देना (धीः) बुद्धि पूर्वक कार्य करना (विद्या) सत्य और असत्य को जानकर सत्य मार्ग का अनुसरण करना (सत्यम्) मन वचन

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

आदर्श शिक्षक—महात्मा हंसराज

आर्य समाज के जाज्वल्यमान रत्नों में एक महान् आत्मा जिसका नाम भी बड़े आदर और श्रद्धा के साथ लिया जाता है, वह हैं महात्मा हंसराज। महात्मा हंसराज जी अपने कार्यों के द्वारा हमेशा सबके प्रेरणास्रोत रहेंगे। महात्मा हंसराज जी अपने जीवन में ऐसे कार्य कर गए हैं जिनके द्वारा वे आने वाली कई पीढ़ियों के लिए मार्गदर्शक का कार्य करते रहेंगे। महात्मा हंसराज जी का जीवन एक आदर्श जीवन है। एक आदर्श शिक्षक के रूप में अपना सर्वस्व समर्पण करने वाले महात्मा हंसराज जी हम लोगों के दिलों में रहेंगे।

महात्मा हंसराज जी का जन्म १९ अप्रैल १८६४ को होशियारपुर जिले के बजवाड़ा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम श्री चूनी लाल और माता का नाम श्रीमती हरदेवी था। महात्मा हंसराज ने जिस परिवार में जन्म लिया वह यद्यपि था तो निर्धन परन्तु मेहनती और स्वाभिमानी परिवार था। हंसराज जी के एक बड़े भाई भी थे जिनका नाम श्री मुलखराज जी था। माता-पिता दोनों ने निश्चय किया कि दोनों को अच्छी शिक्षा दी जाए। माता-पिता ने सोचा होगा कि बालक पढ़ लिख कर घर की आर्थिक अवस्था सुधारेगा, परन्तु उन्हें क्या पता था कि उनका बालक एक बहुत बड़ा धर्म रक्षक, देश सेवक और महात्मा बनने वाला है। जो केवल अपने परिवार, कुल का ही नहीं अपितु राष्ट्र का नाम रोशन करने वाला बनेगा।

बचपन से ही हंसराज में महान् पुरूषों के गुण दिखाई देने लगे थे और बचपन से ही हंसराज का यह प्रभाव था कि उनका कोई साथी उनकी बात टाल नहीं पाता था। दूसरों का उपकार करने की भावना भी उनमें बचपन से ही थी। जब वे पढ़ते थे तभी से वे दूसरे पड़ोसियों के पत्र आदि पढ और लिख दिया करते थे। 12 वर्ष की आयु में उनके पिता का देहान्त हो गया था। आर्थिक कठिनाईयों का सामना करते हुए भी हंसराज ने अपनी पढ़ाई जारी रखी और अन्तत: उन्होंने बी.ए. पास कर ली जो उस समय बहुत ऊंची डिग्री मानी जाती थी। यदि वह चाहते तो सरलता से सरकारी नौकरी करके धन-धान्य से परिपूर्ण हो सकते थे परन्तु उन्होंने अपना सर्वस्व आर्य समाज की सेवा में अर्पित कर दिया और परोपकार की भावना हंसराज जी को घर की सीमाओं में कैद नहीं कर सकी। महात्मा हंसराज जी ने ठीक समय पर अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया।

महर्षि दयानन्द की याद में 1886 में जब डी. ए. वी. स्कूल की स्थापना की गई तो एक सुयोग्य मुख्याध्यापक की आवश्यकता अनुभव हुई। महात्मा हंसराज जी ने अपने बड़े भाई श्री मुलखराज जी से सलाह करके अपने आपको अवैतनिक संस्था के लिए समर्पित कर दिया। महात्मा हंसराज चाहते तो अन्य संसारिक लोगों की तरह उच्च से उच्च पद प्राप्त कर लाखों की सम्पत्ति जुटा लेते। लेकिन जाति की दुरावस्था ने उन्हें बलिदान के मार्ग पर बढ़ने के लिए प्रेरित किया। सारी आयु निर्धनता, तपस्या और त्याग में बिताते हुए संसार के कल्याण के लिए धर्म, देश और जाति की सेवा का प्रण लिया। होश सम्भालने से लेकर अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक उन्होंने देश से अज्ञानता को दूर करने का प्रयत्न किया। हिन्दु समाज को सुधारने और दु:खी, भूकम्प, अकाल, दुर्भिक्ष, महामारी, पीड़ितों की सेवा सहायता करने के लिए तत्पर रहे। उनकी निस्वार्थ सेवाओं और निष्काम प्रयत्नों से उन्हें हर क्षेत्र में पूर्ण सफलता मिली। उनका सारा जीवन तप, और त्याग का जीवन था। धन-दौलत, सुख-सम्पदा भोग ऐश्वर्य सबका त्याग किया। भाई द्वारा प्राप्त केवल चालीस रूपये मासिक पर गुजारा करते रहे। स्व-प्राप्त गरीबी में दुख के दिन काटना सबसे कठोर तपस्या है। यक्ष के पूछने पर कि तप क्या है? युधिष्ठिर ने कहा था कि अपने कर्त्तव्य करते रहना ही तप है। दुख-सुख, रोग-अरोग, मान-अपमान की परवाह किए बिना अपने कर्त्तव्य का पालन करते जाना सच्चा तप है। महात्मा हंसराज जी ने अपने भाषण में कहा था कि मनुष्य जीवन का एक ध्येय होना चाहिए, एक केन्द्र जहां पहुंच कर वह अपना जीवन कुर्बान कर सके। एक स्थान होना चाहिए जहां पहुंच कर गर्व से कह सके कि चाहे प्राण चले जाए, चाहे सब ओर नाश विनाश नाचने लगे तो भी वह लौटेगा नहीं, पीछे नहीं हटेगा। ऐसे स्थान पर ही मनुष्य का वास्तविक चरित्र और उसका मोल मालूम होता है। यह शब्द महात्मा जी के ही मुख को शोभा देते है, जिन्होंने जीवन का एक ध्येय मानकर उम्र भर तपना मंजूर किया।

त्याग की साक्षात् मूर्ति, सरलता एवं सादगी का सजीव चित्र, निरभिमानता के आदर्श महात्मा हंसराज का जीवन अनुकरणीय है। रहने का एक छोटा सा कमरा, लकड़ी का एक तख्तपोश, दो टूटी हुई कुर्सियां और कपड़े मोटे-मोटे शुद्ध स्वदेशी यह उनका वेश था। महात्मा जी के जीवन का एक ही उद्देश्य था कि ऋषि का मिशन सफल हो ताकि हिन्दू जाति में नया जीवन आए। वह कुरीतियों और वहमों से बचे, एक ईश्वर की उपासक हो और पराधीनता की बेड़ियों को काट सके। महात्मा हंसराज जी ने महर्षि दयानन्द के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन आर्य समाज के प्रति अर्पण कर दिया।

वस्तुत: महात्मा हंसराज जी श्वेत वस्त्रों में ही सन्यासी थे। जब 1933 में अजमेर में आयोजित ऋषि दयानन्द के निर्वाण की अर्ध शताब्दी पर कुछ सन्यासियों ने स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज से निवेदन किया कि वे उनके साथ चलकर महात्मा हंसराज जी को चतुर्थाश्रम की दीक्षा लेने के लिए प्रेरित करें। तब वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि निर्द्वन्द तथा सभी प्रकार की ऐषणाओं से मुक्त महात्मा जी किसी भी कमण्डलधारी सन्यासी से कम नहीं हैं और मात्र कपड़े रंगकर सन्यास का बाना पहनने की उन्हें कोई आवश्यकता नहीं है।

महात्मा हंसराज जी का सम्पूर्ण जीवन मानवता के लिए समर्पित था। शिक्षा क्षेत्र के साथ-साथ उन्होंने सामाजिक क्षेत्र में अपना योगदान दिया। चाहे भूकम्प हो, अकाल हो, महात्मा जी हमेशा मानवता के कल्याण के लिए समर्पित रहे। 19 अप्रैल को महात्मा हंसराज जी के जन्मदिवस पर हम उनके मानवता के पथ-प्रदर्शक कार्यों को अपने जीवन में अपनाएं। शिक्षा तथा सामाजिक क्षेत्र में किए गए कार्यों के लिए उन्हें हमेशा याद किया जाएगा।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

महर्षि दयानन्द का वैदिक–दर्शन

ले–डा. रामदास निराकारी

महर्षि दयानन्द राष्ट्रिय–क्षेत्र में ही नहीं, अपितु वैदिक–दर्शन के क्षेत्र में भी युग–पुरुष के रूप में अवतरित हुए थे। वेद को वे ईश्वर–प्रदत्त ज्ञान के रूप में ग्रहण करते थे, इसलिये ईश्वर के साथ–साथ वेदों पर भी वे अटूट श्रद्धा रखते थे। उन्होंने यद्यपि अपने समय में प्रचलित धार्मिक विश्वासों का खण्डन किया है, फिर भी वे ईश्वर की अद्वितीय–सत्ता में विश्वास करते हुए वेदों की व्याख्या करते हैं। वैदिक परम्पराओं को पुनरुज्जीवित करने के लिये तथा सामाजिक पुनरुत्थान के लिये उन्होंने वेदों को सर्वप्रथम स्थान दिया, तथा राष्ट्रिय–दृष्टि से वेदों के दार्शनिक विचारों को नवीनता प्रदान की।

'वेद' सम्पूर्ण–ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा उस ज्ञान को यथावत् समझने वाले विद्वानों को 'ऋषि' कहा जाता है। 'ऋषि' शब्द का शाब्दिक अर्थ 'द्रष्टा' होता है; 'दार्शनिक' शब्द का अर्थ भी 'द्रष्टा' ही होता है। परन्तु 'वैदिक ऋषि' को यदि 'दिव्य–द्रष्टा' कह दें, तो अत्युक्ति नहीं होगी, क्योंकि वैदिक–ज्ञान दिव्य–ज्ञान का अधिष्ठान हैं, और उसका आहक भी उसी स्तर का होना चाहिये। वैदिक मन्त्रों में जहाँ अनेक देवताओं के स्वरूप पर विचार किया जाता है, वहाँ उनके ज्ञाता ऋषियों के स्वरूप पर भी विचार होना चाहिये; इसलिये हम 'ऋषि' और 'दार्शनिक' की अभिन्नता को शाब्दिक अर्थ के आधार पर स्वीकार करते हैं। महर्षि दयानन्द में 'ऋषित्व' और 'दार्शनिकत्व' दोनों हैं, इसलिये उन्हें 'महर्षि' कहा गया है।

सायण आदि अनेक आचार्य वैदिक देवताओं के व्यक्तिगत तथा स्वतन्त्र अस्तित्व को स्वीकार करते हैं, परन्तु महर्षि दयानन्द अनेक देवताओं को ईश्वर के ही अनेक नाम कहते हैं। वे एक ही ईश्वर या परमेश्वर की सत्ता को मानते हुए परम्परागत बहुदेववाद में विश्वास नहीं करते, क्योंकि अनेक देवताओं की स्वतन्त्र सत्ता तथा स्वरूप स्वीकार करने पर समाज में विभाजन हो जाता है, और लोगों में अन्धविश्वास की भावनाएँ प्रबल हो जाती हैं। इस लिये तत्त्व–ज्ञान की दृष्टि से एक ईश्वर या एक परमात्मा या ब्रह्म की सत्ता में विश्वास रखना श्रेयस्कर है और मनोवैज्ञानिक–दृष्टि से भी यह प्रशस्य है। उपनिषदों का ब्रह्मवाद भी एक ही मूलसत्ता का अनेक नामों से प्रतिपादन करता है। स्वयं ऋग्वेद में इस सिद्धान्त का समर्थन करते हुए कहा गया है, कि एक ही सत् को अग्नि, इन्द्र, मित्र आदि अनेक नामों से विद्वान् वर्णन करते हैं–

''इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो
दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्य्
अग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः।।''
(१,१६४,४६)

इस मन्त्र को उद्धृत करते हुए महर्षि दयानन्द 'ऋग्वेद–भाष्य' के प्रथम मन्त्र की व्याख्या में कहते हैं, कि–

''अनेनैकस्य सतः परब्रह्मण इन्द्रादीनि बहुधा नामानि सन्तीति वेदितव्यम्।''

अर्थात् ऋग्वेद के उपर्युक्त मन्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है, कि एक ही सद्रूप परब्रह्म के इन्द्र आदि बहुत से नाम होते हैं। इसके साथ ही वे यजुर्वेद का मन्त्र–

''तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आप. स. प्रजापतिः।।''
(यजु० ३२,१)

उद्धृत करते हुए लिखते हैं, कि जो सच्चिदानन्द लक्षण वाला ब्रह्म है, वही अग्नि आदि नामों से वाच्य है, क्योंकि शतपथ ब्राह्मण में भी 'ब्रह्म अग्निः' (१,४,२,११) तथा 'आत्मा वा अग्निः' (१,२,३,२) कहा गया है। इससे अत्यन्त स्पष्ट रूप से यह ज्ञात होता है कि महर्षि एक ही ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करते हैं; वह ब्रह्म ही सच्चिदानन्द परमेश्वर है; तथा वेदों में उसे ही अग्नि आदि विभिन्न नाम दिये गये हैं। इस तरह–महर्षि ने एक ही विश्वात्मा या परमात्मा के स्वरूप को वेदों में अनेक रूपों में देखा है, यह उनका वैदिक–क्षेत्र में आध्यात्मिक–दर्शन है।

वेद को वे केवल आध्यात्मिक दृष्टि से ही नहीं देखते थे, अपितु इसे सम्पूर्ण–ज्ञान का ग्रन्थ मानते थे, इसलिये वैदिक–मन्त्रों में प्राप्त देवताओं की वे आधिदैविक या प्राकृतिक तथा आधिभौतिक व्याख्या भी करते थे। इस प्रकार वे कहते हैं ''(अग्नि) परमेश्वरं भौतिकं वा'' (ऋग्वेद १,१,१) अर्थात् मैं अग्नि नाम वाले परमेश्वर तथा भौतिक या प्राकृतिक अग्नि की स्तुति, याचना आदि करता हूँ। इसलिये वेदों का सर्वप्रथम देवता 'अग्नि' किसी स्वर्ग आदि लोक में रहने वाला दिव्य–पुरुष नहीं, बल्कि वह एक ओर तो सर्वत्र वास करने वाला या सब प्राणियों के हृदय में रहने वाला परमात्मा है, तथा दूसरी ओर 'अग्नि' भौतिक–अग्नि के रूप में हमारे अनुभव का विषय है, जिसका उपयोग अनेक प्रकार से होता है। वैज्ञानिक दृष्टि से वह एक शक्ति का पुंज है, या एक ऐसा तत्त्व है, जो हमारे अनेक कार्यों की सिद्धि करता है, तथा हम सब के जीवनों का प्रथम आधार है।

अग्नि के समान इन्द्र भी महर्षि दयानन्द के लिये अनेक अर्थों का प्रतिनिधित्व करता है। बहुधा वे इन्द्र को परम ऐश्वर्य वाला ईश्वर समझते हैं, क्योंकि यह इस शब्द का धातु–अर्थ है। इसलिये वे 'इन्द्रं परमेश्वरं' (ऋ० १,४,६) या 'इन्द्र ईश्वरों वायुर्वा' (ऋ० १,५,३) कहकर इन्द्र को ईश्वर मानते हैं। इन्द्र को वे कभी–कभी जीव के अर्थ में भी ग्रहण करते हैं, जैसे '(इन्द्रस्य) जीवस्य' (ऋ० १,२२,१६)। इन्द्र को 'ईश्वर', 'जीव' आदि कहना वेद के आध्यात्मिक अर्थ की ओर संकेत करना है। कभी–कभी वे इन्द्र को 'सूर्य', 'वायु' आदि प्राकृतिक–तत्त्वों के रूप में ग्रहण करते हैं, जैसे '(इन्द्रस्य) सूर्य्यस्य' (ऋ० १;६,८), '(इन्द्रम्) विद्युतम्' (ऋ० १,२३,७), '(इन्द्रः) सूर्यः' (ऋ० ३,४५,२), 'इन्द्र ईश्वरो वायुर्वा' (ऋ० १,४,३)। ये सभी अर्थ 'इन्द्र' शब्द की आधिदैविक या प्राकृतिक व्याख्या करते हैं। इसी प्रकार वे कभी–कभी इन्द्र के लौकिक भौतिक आदि अर्थ भी करते हैं, जैसे '(मघवानम्) बहुधनवन्तं वैश्यम् (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य राजानम्' (ऋ० ३,३८,१०), '(इन्द्रः) विद्युदिव सर्वाधीशो राजा' (ऋ० ३,४१,३)। 'इन्द्र' शब्द की इस प्रकार व्याख्या करने से उनकी विद्वत्ता के साथ–साथ उनकी व्यावहारिक–प्रतिभा का भी ज्ञान होता है। परम्परागत पौराणिक विचारों के अनुसार इन्द्र 'देवराज' हैं, जो स्वर्ग में राज्य करता है, आदि आदि। परन्तु महर्षि 'इन्द्र' शब्द के धातु तथा निरुक्ति द्वारा सिद्ध अर्थों पर ही विश्वास करते हैं। उनका राष्ट्र दृष्टिकोण ही उनके वैदिक–दर्शन का व्यावहारिक आधार है।

अन्य वैदिक देवताओं का स्वरूप भी महर्षि के अनुसार ईश्वरीय, प्राकृतिक तथा व्यावहारिक है। पुराणों में वरुण को जल में वास करने वाला देवता माना जाता है, परन्तु स्वामी दयानन्द के अनुसार वह 'सर्वोत्कृष्ट जगदीश्वर या विद्वान्' (ऋ० भा० १, २५, १६) है। इसी प्रकार 'सोम' के अर्थों में नवीनता दिखाते हुए वे कहते हैं '(सोमस्य) उत्पन्नस्य कार्यभूतस्य जगत... (सोमपाः) सर्वपदार्थ–रक्षकः' (ऋ० भा० १, ४, २), अर्थात् सोम को वे जगत् और सारे पदार्थों के अर्थ में लेते हैं। इसी प्रकार 'सरस्वती' को वे किसी विशेष आकार वाली देवी नहीं मानते, बल्कि अच्छे ज्ञान आदि गुणों के परिपूर्ण, सारी विद्याओं को प्राप्त कराने वाली वाक् या वाणी के रूप में चित्रित करते हैं (ऋ० भा० १, ३, १०)। इसी प्रकार वे वायु को भी पौराणिक देवता न मानकर अपने भाष्य में लिखते हैं, कि वायु अनन्तबल वाला, सब प्राणों का नियामक ईश्वर तथा सारे मूर्त द्रव्यों का आधार, जीवन का हेतु और भौतिक पदार्थ है (ऋ० भा० ,१ २, १)। इसी प्रकार प्रत्येक वैदिक शब्द में वे कोई न कोई नया भाव खोजने का यत्न करते हैं, जिसका कोई न कोई लौकिक या पारमार्थिक उपयोग हो, जैसे 'शची' को वे 'प्रज्ञा या कर्म' (ऋ० भा० ३, ६०, २) तथा 'माया' को भी 'प्रज्ञा' (ऋ० भा० ३, ६०,१) के अर्तों में प्रतिपादित करते हैं; 'वृषभ' को 'बलिष्ठ' (ऋ० भा० ३, ५५, १७), और 'वृष्टिकर' (ऋ० भा० ७, ५५, ७), 'ऋभु' को 'मेधावी' (ऋ० भा० १, ५२, २), 'उषा' को 'सुशोभा और कान्ति' (ऋ० भा० १, ४८, ७), 'मरुतः' को वायु और सेनाध्यक्ष (ऋ० भा० १, ३७, १२), 'वज्र' को 'शस्त्र के समान अज्ञान को नष्ट करने वाला उपदेश' (ऋ० भा० १, ५५, ५), तथा 'वृत्र' को 'मेध' (ऋ० भा० १, ५६, ५) और 'धन' (ऋ० भा० ३, ३८, १०) के अर्थों में ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार अपने भाष्य में उन्होंने एक ओर व्याकरण, तथा निरुक्त का ध्यान रखा है, तथा दूसरी ओर वे सर्वत्र

(शेष पृष्ठ 7 पर)

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज

ले.-श्री सन्तोषराज

बृहदारण्यकोपनिषद् (१,५,१७) में कहा है कि जब धर्मपरायण पिता यह समझता है कि उसका मृत्यु का समय आ पहुँचा है, तो वह अपने पुत्र से कहता है-''त्वं ब्रह्माऽसि, यज्ञोऽसि, लोकोऽसि, तुम ब्रह्म हो, तुम यज्ञ हो, तुम लोक हो''। पुत्र भी उत्तर देता है-''अहं ब्रह्माऽस्मि, यज्ञोऽस्मि, लोकोऽस्मि (हाँ पिता, मैं ब्रह्म हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं लोक हूँ)।'' अर्थात् जो सद्ज्ञान प्राप्त किया है, वह ब्रह्म है, जो परोपकार के कार्य किये हैं, वह यज्ञ है और जो संसार में है वह लोक है। जब पिता संसार से जाता है तो वह अपनी शक्तियों के साथ पुत्र के शरीर में प्रवेश करता है, जो कुछ वह आप नहीं' कर पाया, उससे अधूरा रह गया है, उस कमी को उसका पुत्र पूरा कर देता है इसीलिये पुत्र (तराने वाला) कहा गया है।

देव दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की और अपने अन्तिम समय में अपने उत्तराधिकारियों से, प्रमुख आर्यों से यही तीन आश्वासन लिये। प्रमुख आर्यों ने, ऋषि के धर्मपुत्रों ने कहा-''भगवन्, वेदोऽस्मि, यज्ञोऽस्मि, लोकोऽस्मि।'' अर्थात् ''हम ने आप से सद्ज्ञान प्राप्त कर लिया है, हमारे अन्दर यज्ञ की भावना कूट-कूट कर भर दी गई है और हम वेद और यज्ञ की साधना के लिये लोक-साधना भी करते हैं।'' महर्षि सन्तुष्ट हुए और अपने महान् कार्य को सुयोग्य हाथों में सौंप कर चल दिये। पं. गुरूदत्त जी विद्यार्थी, धर्मवीर पं. लेखराज, श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज और प्रातः स्मरणीय महात्मा हंसराज जी सरीखे कतिपय महानुभावों के पवित्र हाथों और बलिष्ठ कन्धों पर यह कार्य आ पड़ा। वेदज्ञान की सुन्दर लहरी कलकल कर बहने लगी। आर्य-साहित्य का सृजन होने लगा। शास्त्रार्थ द्वारा मिथ्याप्रचार का खण्डन और सत्य-सिद्धान्तों का मण्डन होने लगा। बच्चा-बच्चा चलता फिरता प्रचारक बन गया, भ्रम, अज्ञान, मिथ्या विचार सभी मिटने लगे। वेद के प्रकाश के सामने मतमतान्तर के दीपक मन्द पड़ने लगे। सद् और असद् में विवेक होने लगा। यज्ञ की भावना की बाढ़ आ गई। वेद-प्रचार के लिए शिक्षा का प्रचार और प्रसार होने लगा। अछूतोद्धार का बीड़ा उठाया गया; अनाथों के पालन-पोषण, अबला और विधवाओं की रक्षा का भार उठाया गया। चारों ओर आर्यसमाज ने एक वृहद् यज्ञ रच डाला।

हिन्दुओं की दानप्रणाली को एक नई दिशा मिली। हिन्दू दान में जगत्-विख्यात है। पर वह दान था मन्दिरों के लिए, महन्तों के लिए। यह दान अनाचार और अज्ञान को बढ़ावा देने वाला सिद्ध हुआ।

आर्य समाज ने इस दान को नया मोड़ दिया। इससे अब यज्ञ रचाये जाने लगे और वेद-प्रचार, शिक्षा-प्रसार और समाज-सुधार के पुनीत कार्य सम्पन्न होने लगे। ज्ञान और कर्म का सुन्दर समन्वय होने लगा। 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा:' की भावना जन-जन के मन में भरी जाने लगी। आर्यसमाज के जीवन का यह सुनहरा काल था। इस काल में साध्य तो था वेद, और साधन थे यज्ञ एवं लोक। ऐसा मालूम होने लगा कि इस देश में न कोई अछूत रहेगा, न अनाथ, न कोई विधवा होगी और न अशिक्षित नारी। ऊँच-नीच का भेद-भाव मिट कर रहेगा, हिन्दू-जाति के दु:ख कट जायेंगे और चारों ओर सुख ही सुख उपजेगा। वेद का नाद देश की पुनीत सीमा को तो गुंजायमान करेगा ही, विदेश में भी वैदिक धर्म का प्रसार होगा। तब किसी उर्दू कवि ने कहा था-

वैदिक धर्म फैलेगा आबशारों में,
चमन के महकते फूलों में, दिलकश बहारों में,
चमकते चाँद सूरज में, सैयारों में, सितारों में,
मैदानों में, ग्रामों में, मनोहर कोहसारों में।।

आज भी वह युग याद आता है तो झूम उठते हैं आर्यसमाजी, आनन्दविभोर हो उठता है यह मन। वह हमारा स्वर्णयुग था।

युग बदला। समय ने पलटा खाया। 'वेदोऽस्मि' का सुन्दर पाठ भूलने लगा। वेद की भावना लुप्त होने लगी। प्रत्येक आर्य केवल सन्ध्या, हवन कर लेने में ही अपने कर्त्तव्य की 'इतिश्री' समझने लगा। वेद की प्रमुखता गौणता में बदलने लगी। यज्ञ प्रमुख स्थान प्राप्त कर गया और साथ ही लोक भी उभर कर सामने आने लगा। यज्ञ की भावना ने ज़ोर पकड़ा, लोक ने सहारा दिया और जगह-जगह पर डी.ए.वी. संस्थाएं खुलने लगीं। लड़कों के स्कूल, लड़कियों की पाठशालाएं, लड़के-लड़कियों के लिए कालेज, ज्ञान व विज्ञान की शिक्षा के केन्द्र, दस्तकारी और शिल्पकला के केन्द्र, आयुर्वेद और ब्रह्मविद्या के संस्थान स्थापित हो गये। अनेक गुरूकुल खुले कि प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को पुनर्जीवन प्राप्त हो। अनाथालय खुले कि जाति के लाल अपनी ही जाति के सुदृढ़ अंग बन पायें। विधवा-आश्रम बनाये गये, नारी-निकेतन और सेवा-सदन खड़े किये गये कि स्त्री-जाति की मान-मर्यादा बनी रहे। ओह! यज्ञ की सुन्दर भावना के ये प्रज्वलन्त उदाहरण आज भी अपना शीश ऊँचा किये विश्वभर को सेवा परोपकार और धन के सदुपयोग का पाठ पढ़ा रहे हैं। तप और त्याग, स्वाभिमान और स्वावलम्बन के बल पर यज्ञ का प्रसार होने लगा। यह युग यज्ञ का युग था। स्वर्णयुग तो न था, पर गौरवमय अवश्य था। परन्तु यह स्थिति भी अधिक काल तक न रही।

समय ने करवट बदली। आँख खुली तो चारों ओर सर्वत्र 'लोकोऽस्मि' का ही साम्राज्य दृष्टिगोचर हुआ। आज यह स्थिति है कि आर्यसमाज में न तो वेद को प्रमुखता है और न यज्ञ की भावना है। चारों ओर 'मैं और मेरा' गूँज रहा है। लोकैषणा ने दबोच लिया है। धन की लोलुपता और अर्थ की भावना ने आ घेरा है। आज प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि रात को सोये हजारों में और प्रात: उठे तो लाखों में खेलता हो। लखपति सोये और उठे तो करोड़पति हो। 'लोकोऽस्मि' का दौर चल रहा है। वेद और यज्ञ का विचार तक नहीं रहा। आज वेद आँखों से दूर है। वेद-प्रचार तो दूर रहा, वेद पर हो रहे प्रहार को रोकने की भी किसी को चिन्ता नहीं। वेद सब सत्य-विद्याओं और जो पदार्थ सत्य-विद्या से जाने जाते हैं, का मूल है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। इस नियम के मानने वाले आर्यों की यह अवस्था है कि कल तक अपने और आज बेगाने। वेद-प्रचार और ज्ञान-प्रसार की भावना लुप्त, समाप्त, भूले-बिसरे युग की बात बनकर रह गई है। कहीं-कहीं किसी आर्य के मन से हूक उठती है, तड़प पैदा होती है, पर वह भी इस लोक-प्रधान युग में विवश होकर बैठ जाता है।

यदि वेद आज आंखों से दूर है जो यज्ञ भी दिल से दूर है। हमें तो 'मैं और मेरे' से गर्ज है, मैं जीता हूँ तो सभी सलामत हैं। मेरे पास धन है, बैंक बैलेन्स है, कोठी है, मोटर है, तो सारा जहान मौज में है। सर्वत्र स्वार्थ का ही साम्राज्य है। 'सौ हाथ से कमा, हजार हाथ से बांट, की भावना जाती रही। 'मा गृध: कस्य स्विद्धनम्' का उपदेश कानों में गूंज पैदा नहीं करता। उस उपदेश को आज कोई नहीं सुनता। यदि इस कान से सुनता है तो दूसरे से निकाल देता है और कहता है कि इसीलिए तो प्रभु ने दो कान दिये हैं। जब यह अवस्था हो, तो अकाल में भूख से मरते हुओं की कौन सुने? कौन धनी मर रहों को बचाने के लिए अपनी तिजोरी खोल दे? और, कौन जमींदार अन्दर ढेर किये हुए अनाज के भण्डार को लुटा दे? यज्ञ की भावना ही नहीं रही, तो तड़प किस के मन में उठे? देश के कोने-कोने में ईसाई-पादरी विदेश से आये असीम धन की सहायता से निर्धन, अनपढ़ हिन्दुओं को धोखेधड़ी से, धन के लालच से, धर्म से पतित कर रहे हैं और देश के धनी, कारखानेदार, जमींदार सभी अपने में मस्त हैं। जाति के इन लालों को बचाने की सुध किस को है? आर्यसमाजी भी अब वे नहीं रहे। ये भी धन के उपासक बन बैठे हैं। वे, जो इन आर्यों के धर्म-प्रेम से, जाति-सेवा से, परोप-कार की भावना से परिचित हैं, मुँह में उंगली लिये इन की ओर निहार रहे हैं, मानों कह रहे हों।

सो गये आज ज़माने को जगाने वाले,
दम रोके हुए बैठे हैं, तूफान उठाने वाले।
लक्ष्य को अपने वे स्वयं भूल गये,
सभी संसार को सन्मार्ग दिखाने वाले।
हा! देव दयानन्द के भक्त कहलाने वालो,
मुँह को ज़रा गिरेबान में अपने डालो।

परन्तु प्रश्न यह है कि आर्यसमाज को यह दुर्दिन क्यों कर नसीब हुआ? पिता ने पुत्र से कहना छोड़ दिया है, उसके मन पर यह अंकित करना भूल गया है कि पुत्र, तुम ''वेदोऽसि, यज्ञोऽसि, और लोकोऽसि''। तुम्हें वेद का ज्ञान प्राप्त करना है, यज्ञ की भावना से ओत-प्रोत होना है, और यज्ञ की पूर्ति के लिए लोक-साधना करनी है। उसका परिणाम यह है जो हम देख रहे हैं। पश्चिम की चकाचौंध ने हमारी आंखों को चुंधिया दिया है। आज पिता धन कमाने में लगा हुआ है और पुत्र धन बढ़ाने में पिता का हाथ बटा रहा है। बाप

(शेष पृष्ठ 7 पर)

आर्य समाज मन्दिर फरीदकोट आर्य समाज स्थापना दिवस मनाया गया

दिनॉक 6 अप्रैल 2019 दिन शनिवार नव विक्रम संवत 2076 के उपलक्ष्य में एवं आर्य समाज स्थापना दिवस पर एक समारोह का आयोजन किया इस अवसर सायं 4.00 बजे स्त्री आर्य समाज द्वारा यज्ञ करवाया गया। मुख्य अतिथि के रूप में डा. निर्मल कौशिक जी को आमन्त्रित किया गया। आर्य समाज फरीदकोट के सुयोग्य व कर्मठ पुरोहित पं० कमलेश शास्त्री जी बड़ी श्रद्धापूर्वक यज्ञ सम्पन्न करवाया। यज्ञ के पश्चात बृजिन्द्रा कालेज की छात्रा सुश्री सुमेधा ने सुन्दर भजन प्रस्तुत किये तत्पश्चात् मुख्यतिथि डा. कौशिक जी ने नववर्ष विक्रम् सम्वत् 2076 उपलक्ष्य में भारतीय संस्कृति में काल गणना एवं संवत्सर का हमारे जीवन में महत्व को बताया उन्होंने आर्य समाज का स्थापना और महर्षि दयानन्द की समाज को देन विषय पर अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने बताया कि स्वामी दयानन्द जी ने सभी मनुष्यों के हितार्थ आर्य समाज की स्थापना की और श्रेष्ठ आचरण वाले व्यक्तियों के समूह को ही आर्य समाज बताया शुद्ध और श्रेष्ठ आचरण वाला व्यक्ति ही 'आर्य' कहलाता है। उन्होंने बताया कि स्वामी दयानन्द जी ने अपने सिद्धान्तों, आर्य समाज के नियमों को आगे बढ़ाने और वैदिक संस्कृति व साहित्य के संरक्षण के लिए ही आर्य समाज की स्थापना की। इस अवसर पर आर्य समाज के मन्त्री श्री सतीश शर्मा व मदन मोहन देवगन स्त्री आर्य समाज की सदस्याओं द्वारा डा. निर्मल कौशिक जी को स्मृति चिन्ह प्रदान कर सम्मानित किया गया। समारोह के अन्त में प्रसाद वितरण किया गया। प्रसाद की सेवा श्रीमती पुष्पा गोयल एवं श्रीमती तरसेम शर्मा माता जी ने की।

–सतीश कुमार शर्मा, मन्त्री

आर्य समाज स्थापना दिवस मनाया

आज 07 अप्रैल 2019 को आर्य समाज शक्ति नगर, अमृतसर में चैत्र प्रतिपदा संवत् 2076 बड़ी धूमधाम से मनाया गया। चैत्र प्रतिपदा के दिन ही युग प्रर्वतक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने मुम्बई में काकड़बाड़ी नामक स्थान पर विक्रमी संवत् 1932 को आर्य समाज की स्थापना की थी। इस अवसर पर आर्य जगत के महान भजनोपदेशक श्रद्धेय पं. सत्य पाल जी 'पथिक' ने आर्य समाज शक्ति नगर अमृतसर में अपने प्रवचनों में बताया कि भारत के महान स्वतन्त्रा सेनानी लाला लाजपत राए जी आर्य समाज को अपनी माँ कहते थे। उन्होंने आर्य समाज के इतिहास और स्वतन्त्रता संग्राम में आर्य समाज के योगदान के बारे विस्तार से बताया। आर्य समाज शक्ति नगर अमृतसर में दीपमाला की गई।

कार्यक्रम के तत्पश्चात् जलपान तथा प्रसाद वितरण किया गया। इस अवसर पर मन्त्री श्री राकेश मेहरा, जुगल किशोर जी आहूजा, धर्मवीर जी, संदीप आहूजा, रविन्द्र आहूजा, प्रवीण तलवाड़, गौरव तलवाड़, दीपक महाजन, अतुल मेहरा, दिनेश आर्य, विश्वानाथ, जतिन्द्र मल्होत्रा, विवेक आर्य, प्रदीप मलिक, बहन ज्योति खेड़ा, विजय वधावन आदि उपस्थित थे।

(राकेश मेहरा) महामन्त्री

आर्य समाज का स्थापना दिवस मनाया

6 अप्रैल को आर्य समाज मन्दिर तलवाड़ा में आर्य समाज का स्थापना दिवस मनाया। प्रातः सात बजे वैदिक सन्ध्या के पश्चात् बृहद हवन यज्ञ किया गया हवन यज्ञ के पश्चात् कृष्णा देवी जी ने, वैवी देवी जी ने और मनस्वी शर्मा ने महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के जीवन में भजन गाये भजनों के पश्चात् पुरोहित परमानन्द ने महर्षि के जीवन पर प्रवचन दिया और बताया कि आर्य समाज की स्थापना महर्षि ने संसार के भले के लिए की थी उन का उद्देश्य था संसार का उपकार करना इस समाज के मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना उन्होंने बताया था कि भारत के लोग आर्य हैं हमारा प्राचीन नाम आर्य है जिसका अर्थ है श्रेष्ठ विचारों वाला जो परोपकार करने वाला हो हमारे देश का प्राचीन नाम आर्यवर्त है यहाँ के रहने वाले लोग आर्य हैं आर्य समाज ने विद्या का प्रसार किया जिस में डी. ए. वी स्कूल कालिज आर्य स्कूल आर्य कालिज और विद्या के गुरूकुलों की स्थापना की जिस में करोड़ों विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं देश में तो किया ही है विदेशों में भी किया है। आर्य समाज आगे भी भलाई के काम करता रहेगा। कार्यक्रम के पश्चात् प्रशाद वितरण किया गया।

–पुरोहित परमानन्द आर्य

नवविक्रमी संवत् व आर्य समाज स्थापना दिवस पर 31 कुंडीय हवन यज्ञ करवाया

नव विक्रमी संवत् 2076 एवं आर्य समाज स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में आर्य महिला क्राफ्ट्स स्कूल किला मंडी बटाला में हवन यज्ञ का आयोजन किया गया। इस 31 कुंडीय हवन यज्ञ में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक पंडित विजय कुमार शास्त्री के ब्रह्मत्व व वैदिक मन्त्रोच्चारण में भारी संख्या में यजमानों ने हवन में आहुति डाली। आर्य समाज औहरी चौक बटाला के संरक्षक जेएन शर्मा व प्रधान परविंदर चौधरी विशेष तौर पर मौजूद थे। इस आयोजन में आर्य शैक्षणिक संस्थाओं के विद्यार्थी, अध्यापक व अन्य लोग भारी संख्या में शामिल हुए। यज्ञ का शुभारंभ संरक्षक जेएन शर्मा ने वैदिक ध्वाजरोहण करके किया। पंडित विजय शास्त्री ने इस दिन की महिमा बखान करते हुए कहा, कि आज के दिन ही परमात्मा ने सृष्टि की रचना की और भगवान श्रीराम का राज्य अभिषेक हुआ था। आज के ही दिन महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना करके न केवल सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जंग शुरू की, बल्कि देश की आजादी के लिए संग्राम करने की अलख जगाई। उन्होंने कहा, कि हमें स्वार्थी न हो कर सभी के हितों के लिए सोचना चाहिए। सभी की उन्नति में अपनी उन्नति देखनी चाहिए। समाज के लिए महर्षि द्वारा किए गए कार्यों का ऋण नहीं चुकाया जा सकता। पंडित सुरेश शास्त्री ने यज्ञ प्रार्थना की। देश, समाज व परिवारों में शांति, सुख, समृद्धि और परस्पर सदभावना की कामना के साथ यज्ञ संपन्न हुआ। आर्य समाज के संरक्षक जतिंदरनाथ शर्मा ने सभी पर्व वैदिक परंपरा के साथ मनाने पर बल दिया। आर्य समाज ओहरी चौक के प्रधान परविंदर चौधरी ने सभी का धन्यवाद किया। इस अवसर पर एमडी डीलक्स स्पोर्टस अशोक अग्रवाल, विजय अग्रवाल, बलविंदर मेहता, डा. नरिंदर खुल्लर, ऋषिदत्त गुलाटी, विनोद सैली, प्रो. अश्विनी कांसरा प्रो एम. एम. चड्डा, सोहनलाल प्रभाकर, सी. एल. नारंग, भूषण बजाज, प्रिंसीपल के पी महाजन, सुरेश महाजन, वरिंदर लाड्डा, नरिंदर बुद्धिराजा, भूषण बजाज, पार्षद सुखदेवराज, प्रिंसीपल नीरू सैली, प्रिं. रजनी बहल, पवन पराशर, राजन बहल, इंद्र सानन, महिंदरपाल चंगा, सचिन सैली, रमेश अग्रवाल और विक्रांत आदि मौजूद थे।

आर्य समाज स्थापना दिवस मनाया

आज दिनांक 07-04-2019 (वि०सं० 2076) रविवार को आर्य समाज मन्दिर कमालपुर होशियारपुर में आर्य समाज का स्थापना दिवस बड़े ही उत्साह और हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस विशेष अवसर पर डा. पी. एन. चोपड़ा ने परिवार सहित हवन यज्ञ की अगुवाई की। नगर से पधारे आर्य जनों ने बढ़-चढ़ कर आहुतियां डालीं। आचार्य भद्र सेन जी का सान्निध्य व आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

कार्यक्रम भजनों से आरम्भ हुआ, श्रीमती दुर्गेश नन्दिनी ने अपनी सुरीली आवाज़ से मन्त्र मुग्ध कर दिया। आर्य वीर दल के प्रथम सदस्य विद्यार्थी खेम राज आर्य ने आर्य समाज की स्थापना पर पेपर पढ़ा और आर्य समाज के लिए काम जारी रखने का प्रण लिया। डी. ए. वी. स्कूल होशियारपुर से चार और विद्यार्थियों ने भी अपना योगदान देते रहने का संकल्प लिया। मंच का संचालन प्रो. यशपाल वालिया ने किया।

अपने मुख्य उदबोधन में डा. प्रो. पी. एन. चोपड़ा ने उपस्थित आर्य जनों से अनुरोध किया कि वे स्थापना दिवस को संकल्प दिवस का रूप दें और घोर अभ्यास करके ऋषि के बताये मार्ग पर चलें, यज्ञ करें और समाज में फैली कुरीतियों को दूर करने के लिए महती प्रयास करें। डा. चोपड़ा ने आगे कहा कि आज के दिन युवकों विशेषकर विद्यार्थियों को प्रथम पंक्ति के दयानन्द अनुयायिओं का अनुकर्ण करते हुए समाज के प्रति अपना योगदान देते रहना चाहिये। अंत में प्रो. के. सी. शर्मा ने डा. चोपड़ा का धन्यवाद किया। शांति पाठ के पश्चात ऋषि प्रसाद बांटा गया।

–प्रो. एन. के. शर्मा प्रधान

पृष्ठ 2 का शेष-वर्तमान काल में वैदिक...

और कर्म में एकता स्थापित कर सत्य मार्ग पर चलना (अक्रोध:) क्रोध के वशीभूत होकर कार्य न करना ये दस लक्षण जिसमें हो वह धर्म है।

निम्न श्लोक धर्म की भावना को अच्छे प्रकार व्यक्त करता है- **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दु:ख भाग भवेत।'** अर्थात् संसार में सभी सुखी हो, सभी स्वस्थ हो, सभी भद्रवाणी बोले तथा संसार में कोई भी दु:खी न रहे। धर्म का यह स्वरूप तो सदैव ही आचरण में लाने योग्य है! विद्वान् भी वही हो जो अपने अध्ययन को आचरण में लाता हो। **'आचारवान् पुरूषो वेद:।'** इसलिए कहा गया है कि **धारणात् धर्ममित्याहु:।** धर्म वह है जिसे जीवन में धारण किया जा सके। वैदिक साहित्य में मनुष्यों से अपेक्षा की गई है कि वे मिल-जुलकर रहे। मिलकर परिश्रम करे और आपस में मिलकर ही धर्म पूर्वक प्राप्त किये धन का उपभोग करें।

सह नावतु सहनौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै।

तेजस्वी नावधीतमस्तु मा विद्विषामहै। तैत्रीय उपनिषद

इसी प्रकार ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 191 में भी मिलजुल कर रहने की भी प्रेरणा दी गई है। यहां हम केवल 1 ऋचा दे रहे हैं-'संगच्छ ध्वं संवदध्वं संवो मनांसि जानताम्। देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते। समाज में तुम सब मिलकर चलो, एक भाषा बोलो, तुम सबके मन एक जैसा ज्ञान रखने वाले हो, जैसे तुमसे पहले ज्ञानी विद्वान् अपना कर्त्तव्य करते आये हैं वैसे तुम भी करो।

वेदों में अंधविश्वास का कहीं कोई नाम भी नहीं है, न ही वेदों में डाकिन, चुडैल आदि शब्दों का उल्लेख है।

मनु स्मृति 5.6 के अनुसार मृतक देह का नाम प्रेत है तथा दाह संस्कार के बाद वह भूत कहलाता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में लिखते हैं-'अज्ञानी लोग वैद्यक शास्त्र अथवा पदार्थ विद्या को पढ़ने-सुनने से रहित होकर ज्वर, सन्निपात आदि शारीरिक और उन्माद आदि मानसिक रोगों को भूत, प्रेत बाधा बताते हैं।'

केवल मात्र वेद ही एक ऐसा ग्रन्थ है जो मनुष्यों को धर्मों में विभक्त नहीं करता है तथा विज्ञान की खोजों का समर्थन करता है। वेदों के विद्वान् स्वामी दयानन्द उसी विचार को सत्य मानने को तैयार रहते थे जो विज्ञान के अनुकूल हो, तर्क संगत हो तथा प्रकृति के नियमों पर आधारित हो। वेदों का भाष्य करते हुए उन्होंने विज्ञान के अध्ययन का क्रम इस प्रकार निर्धारित किया था-ताप, विद्युत, वायु, ध्वनि, पदार्थ, चुम्बकत्व आदि। वेदों में गुरूत्वाकर्षण सापेक्षता, क्वाण्टम सिद्धांत आदि का वर्णन उन्होंने सन् 1875 में ही कर दिया था। क्वाण्टम सिद्धांत के अनिश्चितता और संभावना का वर्णन ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में हुआ है।

सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में भी वेदों के विचार विज्ञान की वर्तमान खोजों के अनुरूप है वेदों में आतंकवाद पर नियंत्रण पाने के विषय में भी विस्तृत वर्णन है। वेदों के अनुसार आतंकवादियों को पहले तो समझा-बुझाकर ठीक रास्ते पर चलने को प्रेरित करना चाहिये और यदि उससे उपचार न हो तो उन्हें कठोर दण्ड देने का रास्ता अपनाया जावे। अथर्ववेद काण्ड 5 सूक्त 29 के 3 मंत्रों में दण्ड देने को कहा गया है। हम यहां उनमें से एक मंत्र उद्धृत कर रहे है-**क्षीरे मा मन्थे यतमोददभ्भा कृष्ट पच्ये अशने धान्ये तदात्मना प्रजया पिशाचा वियात यन्ता मगदो३यमस्तु।**

(यतमा:) जिस किसी ने (क्षीरे) दूध में अथवा (मन्थे) मट्ठे में (अशने) भोजन में अथवा (अकृष्ट पच्ये) बिना जुते हुए खेत में उत्पन्न (धान्ये) यव आदि में (मा) मुझको (ददम्भ) धोखा दिया है, (तत्) वह (पिशाच:) मांस भक्षक (आत्मना) अपने जीवन और (प्रजया) संतान के साथ (वि) विविध प्रकार (यातयन्त) पीड़ा पावे और (अयं) मैं (असद:) निरोग (अस्तु) होऊ।

अपराधी कोई भी हो, चाहे आर्य हो चाहे अनार्य हो, उसे दण्ड अवश्य ही मिलना चाहिये।

अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्रा मिदास।

दासस्य वा मद्यवन्नार्यस्य वा सुनुतुर्यवया वधम्।। ऋ. 10.2.3

(इन्द्रो) हे राजन्। (जिघांसत) मारने की इच्छा करने वाले (अभिदासत:) अभिद्रोह करने वालों के (वज्रं) शस्त्र को (अन्तरयच्छ) अन्तर्हित कर दे। (मद्यवन्) हे धनों के स्वामी (दासस्य) दस्यु का हो (वा) अथवा (आर्यस्य) आर्य का हो उसके (वधं) आयुध को (सुनुत:) अन्तर्हित (यदय) पृथक् कर दो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेद के ज्ञान की प्रासङ्गिकता वर्तमान में ही नहीं सदैव रहेगी।

पृष्ठ 5 का शेष-महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज

डाल-डाल है, तो पुत्र-पात-पात। पिता को काम में पहुँचने में कुछ देर है, तो पुत्र पहले काम पर जा धमकता है। धर्म की चिन्ता करे तो कौन? जाति के संकट टालने की सोच करे तो कौन? जाति के संकट टालने की सोच करे तो कौन? वेद की रक्षा की चिन्ता और यज्ञ करने की कामना किसे है? आर्यसमाज में वैदिक साहित्य की रचना कौन करे और पहले से विद्यमान ज्ञान को कौन पढ़े? आर्यसमाज के सत्संग में आने के लिए समय कहाँ से निकालें? यज्ञ कौन रचाये? जब ज्ञान ही नहीं, तो कर्म कैसे हो? यज्ञ में आस्था ही किस को है? सब से बड़ा यज्ञ तो अपने पेट की पूजा है और फिर पेट भी वह जो भरने में ही नहीं आता। पिता और पुत्र दोनों लोकैषणा की दौड़ में हैं। पुत्र जवान है, इस लिए बाप से आगे निकल गया है और बाप कभी-कभी रुक कर सोचता है कि क्या जिस मार्ग पर पुत्र सरपट दौड़ रहा है, यह कल्याण का मार्ग है? क्या इससे पुत्र का भला होगा? इस में समाज का कल्याण है? क्या जाति का कुछ बन सकेगा? पुराना आर्यसमाजी है न, कभी ''कमजोरी'' का क्षण आ ही जाता है। परन्तु शीघ्र ही सिर झटक कर इस विचार को दूर भगा देता है और चिल्ला कर बेटे से कहता है-''शाबाश बढ़े चलो।'' और हम भी बड़े-बूढे कभी कभी सत्संग के बाद परस्पर, चिन्तित हो, पूछते हैं कि आर्यसमाज का क्या बनेगा? नवयुवक इस ओर नहीं आते, इस कार्यभार को कौन उठायेगा? देश-विभाजन के बाद इस प्रश्न ने उग्र रूप धारण कर लिया है। उत्तर हम सब जानते हैं, परन्तु मुख पर नहीं लाते। अपनी सन्तान को हम आर्यसमाजियों ने स्वयं आर्यसमाज के समीप फटकने नहीं दिया। न मैं स्वयं कह सकता हूं 'वेदोऽस्मि' 'यज्ञोऽस्मि' और न अपनी सन्तान को इन दोनों के महत्त्व से परिचित होने दिया है। जन्म से मैंने उसके कान में फूंका है-हे पुत्र, 'त्वं लोकोऽसि'। इस युग में ''मैं और मेरा ही सब कुछ है। ''तू और तेरा'' मुझे भूल चुका है। मेरी सन्तान को भला कैसे याद आये और आर्यसमाज की बिगड़ी की कौन बनाये और महर्षि दयानन्द के छोड़े हुए कार्य को पूरा कौन करे?

पृष्ठ 4 का शेष-महर्षि दयानन्द का वैदिक...

व्यावहारिकता का ध्यान रखते हैं।

इस थोड़े से विवेचन के आधार पर यह सिद्ध हो जाता है, कि महर्षि दयानन्द का वैदिक-दर्शन क्या था। उन्होंने वेदों को दिव्य-ज्ञान के स्वरूप में निरूपित किया है। बहुधा अपने भाष्य में वे ईश्वर को वैदिक-मन्त्रों के उपदेशक या वक्ता के रूप में वर्णन करते हैं। वेदों के आधार पर वे ईश्वर को निराकार, निर्विकार, सर्वगुण-सम्पन्न आदि प्रतिपादित करते हैं। वैदिक-अर्थों में राष्ट्रिय-भावनाओं को लाना उनकी मौलिकता का परिचायक है। वे वैदिक-ज्ञान को मानवमात्र के लिए उपयोगी समझते थे। सम्पूर्ण वेदों पर वे यद्यपि भाष्य नहीं लिख पाये, फिर भी उन्होंने जितना लिखा है, वह उनके विचारों को समझने के लिये पर्याप्त है। वे अध्यात्मवादी होने के साथ-साथ राष्ट्रवादी सन्त और सामाजिक-नेता थे। आर्य समाज की स्थापना का उनका उद्देश्य वैदिक-परम्पराओं की फिर से स्थापना करना था। यदि संक्षेप में कहा जाये, तो उन्होंने अपने वेद-सम्बन्धी दार्शनिक विचारों के आधार पर ज्ञान, भक्ति और कर्म में व्यावहारिक समन्वय दिखाया है।

आर्य मर्यादा के ग्राहक महानुभावों की सेवा में

आर्य मर्यादा साप्ताहिक निरन्तर आपकी सेवा में पहुंच रही है। जिन आर्य मर्यादा के ग्राहकों ने अभी तक अपना वार्षिक शुल्क या पिछला शुल्क नहीं भेजा है उनसे विनम्र प्रार्थना है कि वह अपना वार्षिक शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। आर्य मर्यादा का वार्षिक शुल्क मात्र 100/- रुपये है और आजीवन सदस्यता शुल्क 1000/- रुपये है। इसलिये मेरी सभी ग्राहक महानुभावों से प्रार्थना है कि वह अपना शुल्क जल्द से जल्द भिजवाने की व्यवस्था करें। इसके साथ ही आर्य समाजों के पदाधिकारियों एवं सदस्यों से भी निवेदन है कि वह अधिक से अधिक आर्य मर्यादा के ग्राहक बनाने में सहयोग करें। आशा है आप का सहयोग हमें प्राप्त होगा।

-व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

सम्पूर्ण मानव जाति का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में आर्य समाज स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में हवन यज्ञ किया गया। जबकि चित्र दो में मंच पर विराजमान आचार्य सुरेश शास्त्री जी एवं अन्य।

आर्य समाज शहीद भगत सिंह नगर जालन्धर में आर्य समाज स्थापना दिवस एवं नव सम्वत्सर के उपलक्ष्य में विशेष कार्यक्रम का आयोजन किया गया। सर्वप्रथम यज्ञ हवन में यज्ञ के ब्रह्मा आचार्य सुरेश शास्त्री ने मुख्य यजमान श्री अंकित गोयल एवं रितिका गोयल से वेद मंत्रों से विशेष आहूतियां डलवा कर विश्व शांति की कामना की। यज्ञ में उपस्थित सभी श्रद्धालुओं ने बड़े श्रद्धा भाव से यज्ञ में भाग लिया। यज्ञ के पश्चात श्रीमती सोनू भारती ने भारतीय नववर्ष के उपलक्ष्य में मधुर भजन सुना कर सभी को विक्रमी नवसम्वत की बधाई दी। श्रीमती सीमा अनमोल तथा उनके बच्चों तथा श्री रवि कुमार ने बहुत सुन्दर भजन सुनाएं। श्री अश्विनी डोगरा जी ने अपने विचार रखते हुये भारतीय संस्कृति की गौरव गाथा का गुणगान किया। मुख्य वक्ता आचार्य सुरेश शास्त्री जी ने आर्य समाज की स्थापना पर अपने विचार व्यक्त किये। उन्होंने कहा कि आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य विश्व भर को आर्य बनाना, सम्पूर्ण मानव जाति का उपकार करना अर्थात् लोगों की शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना है। आर्य समाज श्रेष्ठ मनुष्यों का समाज है। आर्य का अर्थ धर्मपारायण, सदाचारी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ है। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि सरदार चरणजीत सिंह अटवाल पूर्व डिप्टी स्पीकर भारत सरकार विशेष अतिथि, भाजपा के जिलाध्यक्ष रमन पब्बी जी आर्य समाज में उपस्थित हुये। उनको सम्मानित किया गया। अटवाल जी ने कहा कि आर्य समाज एक क्रान्तिकारी संस्था है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने समाज में शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किया, वह सराहनीय है। आर्य समाज के प्रधान श्री रणजीत आर्य जी ने कहा कि आज आर्य समाज का 145वां स्थापना दिवस मनाया जा रहा है। आर्य समाज ने अपने स्थापना काल से लेकर आज तक समाज एवं राष्ट्र कल्याण के कार्य किये हैं। आर्य समाज ने नारी शिक्षा के लिये, समाज में फैली बाल विवाह, सती प्रथा जैसी कुरीतियों को दूर करने के लिये कार्य किया। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द ने कोई नया मत, मजहब और सम्प्रदाय नहीं बनाया था। आर्य समाज के दस नियमों को अपने जीवन में धारण करके ही सम्पूर्ण प्राणी मात्र का कल्याण किया जा सकता है। मैं आर्य समाज में आए हुये सभी महानुभावों का हृदय से धन्यवाद करता हूं। आप का सहयोग इसी प्रकार हमें मिलता रहे यही कामना करता हूं। मंच का संचालन आर्य समाज के महामंत्री श्री हर्ष लखनपाल ने किया। इस अवसर पर भूपेन्द्र उपाध्याय, नालिनी उपाध्याय, चौधरी हरीचंद, ओम प्रकाश मेहता, पूनम मेहता, केदारनाथ शर्मा, राकेश बाबा, राजेन्द्र कुमार शर्मा, मोहन लाल, सुनीत भाटिया, मोहित खन्ना, रीवा खन्ना, बैजनाथ, विजय कुमार चावला, उषा आहूजा, मीनू शर्मा, अर्चना मिश्रा, सोनिया देवी, उर्मिल भगत, दिव्या आर्या, अनु आर्या, इन्दु आर्या, सुभाष आर्य, वंश आर्य, उर्मिल शर्मा, डिम्पल भाटिया, रहमत भाटिया, वंशिका, राजेश कुमार, ईश्वर चन्द्र रामपाल, रविन्द्र आर्य, सुभाष मेहता, डा. अमित शर्मा, ललित मोहन कालिया, स्नेहलता कालिया, निखिल लखनपाल, डंकेश्वर मित्तु, रानी अरोडा, ओम गंगोत्रा, वेद प्रकाश, धर्मेश कुमार, रविन्द्र आर्य, राज कुमार, सुनीता रानी, मोनिका गंगोत्रा, चन्द्रशेखर, धीरज कुमार, दिव्या मेहता, मनु आर्या, सुदर्शन आर्य, शिखा आर्य, दीपक सूरी, तेजस, राजेश मल्होत्रा, हितेश स्याल, उमेश बतरा, नवीन चावला, अदिति चावला, संगीता तिवारी एवं नगर निवासियों ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

रणजीत आर्य
प्रधान आर्य समाज

आर्य समाज बस्ती गुजां जालन्धर में नव सम्वत एवं आर्य समाज स्थापना दिवस मनाया

आर्य समाज बस्ती गुजां जालन्धर में नव संवत्सर एवं आर्य समाज स्थापना दिवस बड़ी श्रद्धा एवं उत्साह के साथ मनाया गया। सर्वप्रथम यज्ञ किया गया जिसमें आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मन्त्री श्री विपिन शर्मा जी ने सपत्नीक यजमान बनकर यज्ञ को सम्पन्न कराया। यज्ञ के ब्रह्मा श्री सुरेश शास्त्री जी ने श्रद्धालुओं से नव संवत्सर एवं आर्य समाज स्थापना दिवस की विशेष आहुतियां डलवाई। यज्ञ के यजमानों को आशीर्वाद तथा भजन प्रस्तुत किए गए। नव संवत् एवं आर्य समाज स्थापना दिवस का महत्व बताते हुए आचार्य श्री सुरेश शास्त्री जी ने कहा कि आर्य समाज की स्थापना आज से 145 वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने की थी। ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना के विषय में अपने विचार रखते हुए सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि मेरा किसी नवीन मत-मतान्तर को चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना-छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सामाजिक कुरीतियों, पाखण्डों को दूर करने में आर्य समाज के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दिया। आर्य समाज के सिद्धान्त और नियम सार्वभौम हैं। आर्य समाज के नियम वेदों पर आधारित हैं। इन नियमों में किसी एक की उन्नति नहीं परन्तु सबकी उन्नति की कामना की जाती है। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के नौवें नियम में लिखा कि-प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का उद्देश्य सारे संसार का कल्याण करना था । वर्तमान में भी आर्य समाज हर क्षेत्र में कार्य कर रहा है। इस अवसर पर आर्य समाज के प्रधान श्री सुदेश शर्मा जी ने भी आए हुये सभी महानुभावों का धन्यवाद किया। इस अवसर पर माता आनन्दायति जी विशेष रूप से उपस्थित हुई और सभी को अपना आशीर्वाद प्रदान किया। इस अवसर पर आर्य समाज के महामन्त्री श्री दिनेश जयरथ, प्रिं. मीनू सलूजा, पंकज जयरथ, विरेन्द्र महेन्द्रु, दीपक जौड़ा, अनिल गुप्ता, जोगिन्द्र चुग, डा. रमेश कम्बोज, चेतन छिब्बर, डा. अजीत भारद्वाज, कान्त करीर, मुकेश शर्मा, विनय, राजेश व अन्य महानुभाव उपस्थित हुए।

आर्य समाज बस्ती गुजां जालन्धर में नवसम्वत व आर्य समाज स्थापना दिवस पर हवन यज्ञ करते हुये श्री विपिन शर्मा जी एवं अन्य।

-सुदेश शर्मा प्रधान आर्य समाज बस्ती गुजां जालन्धर

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।